करने के लिये व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं;...' निश्चय का भान कराने के लिये व्यवहार का उपदेश है। व्यवहार आदरणीय है नहीं। समझ में आया? तेरा आत्मा शरीर से भिन्न है। ये शरीर नहीं है? यह गाय का जीव, मनुष्य का जीव। तो क्या गाय का जीव है? जीव तो जीव का है। मनुष्य जीव, पर्याप्त जीव, अपर्याप्त जीव, काला, काली गाय का जीव, सफेद गाय का जीव। तो काली गाय का जीव है? जीव तो जीव है। परन्तु उसे समझाने को जीव को समझाने को शरीर की अपेक्षा लेकर समझाया है। परन्तु शरीर की अपेक्षा लेकर अन्दर समझ में आता है ऐसा नहीं। व्यवहार से समझाया कि तेरा आत्मा यह है। उसको व्यवहार अंगीकार नहीं करना, निश्चय को अंगीकार करना। वह उपदेश व्यवहार का, निश्चय अंगीकार करने को दिया है। व्यवहार को अंगीकार करने को दिया नहीं।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर सं.-२४८८, श्रावण वद-६, मंगलवार, दि. २१-८-१९६२,
सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १३

मोक्षमार्गप्रकाशक, सप्तम अध्याय चलता है। शिष्य का प्रश्न है। व्यवहार और निश्चय का कथन चला। शास्त्र में जो निश्चय से स्वद्रव्य आश्रय बात कही है वह सत्यार्थ है, वह उपादेय है। और शास्त्र में जो व्यवहारनय की मुख्यता से बात कही है वह असत्यार्थ है और हेय है। देखो, शिष्य का प्रश्न। तो एक निश्चयनय का ही उपदेश करना था। यदि व्यवहारनय हेय और असत्यार्थ है तो एक ही नय का उपदेश करना था, दो नय का उपदेश शास्त्र में क्यों कहा? बराबर है? शेठी! एक ही नय का करना था, जो उपादेय है वही करना था। असत्यार्थ कहो, हेय कहो, छोड़नेयोग्य कहो, और उसका उपदेश करना, उसका क्या कारण है? तुम कहते हो ऐसा प्रश्न समयसार में ८वीं गाथा में हुआ है और उसका उत्तर भी दिया है।

अनार्य मनुष्य उसकी भाषा बिना समझ सकता नहीं। अनार्य को उसकी भाषा से समझावे तो वह समझ सकता है। स्वस्ति ऐसा कहा, स्वस्ति। स्वस्ति क्या अनार्य मनुष्य को स्वस्ति की खबर नहीं। क्या है यह? क्या कहते हैं? टगटग मेंढे की भाँति

देखता है कि कहते हैं क्या? स्वस्ति। तब दूसरा कोई उसका अर्थ करता है कि तेरा अविनाशी कल्याण हो, स्व-सु अस्ति। कल्याण हो ऐसा स्वस्ति का अर्थ होता है। तब उसे आनंद-आनंद हो जाता है। ओहो..! इसमें तो मेरे आनंद का आशिर्वाद है। स्वस्ति का (अर्थ) समझ पाता है।

ऐसे व्यवहारनय से उपदेश निश्चय को समझाने को देने में आया है। लेकिन आया है, फिर भी व्यवहारनय अंगीकार करनेलायक नहीं (है)। बहुत गड़बड़ भाई! समझे? एक सोलिसीटर थे, वह ८वीं गाथा में से निकालते थे। है अभी। देखो! यहाँ ८वीं गाथा है, उसमें कहा है व्यवहार बिना परमार्थ हो सकता नहीं। ऐसा कहाँ कहा है? कहा। व्यवहार बिना परमार्थ का उपदेश नहीं हो सकता। व्यवहार से परमार्थ समझा जाता है। लेकिन व्यवहार से व्यवहार समझा जाता है तो व्यवहार श्रोता को औरौ वक्ता को दोनों को अंगीकार करने लायक नहीं। शेठी! वह चला देखो!

'**निश्चय को अंगीकार करने के लिये व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं;...**' समझे? व्यवहारनयो नानुसर्तव्य। निश्चय से आत्मा का वास्तविक स्वरूप समझाने को व्यवहार से उपदेश देते हैं। '**परन्तु व्यवहारनय है सो अंगीकार करने योग्य नहीं है।**' लेकिन फिर भी वह व्यवहारनय आदरणीय नहीं। यह कठिन, व्यवहार आदरणीय नहीं, जगत को कठिन (पड़ता है)। व्यवहार आदरणीय नहीं? तो कहा क्यों? सुन तो सही। उसको समझाने में दूसरा कोई उपाय नहीं, रीति नहीं। समझाने में व्यवहार आता है। परन्तु व्यवहार समझाता है परमार्थ को। अंतर चैतन्यमूर्ति क्या वस्तु है उसको समझाते हैं।

'**प्रश्न :-- व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता?**' व्यवहार बिना निश्चय सत्य का उपदेश, असत्यार्थ बिना सत्य का उपदेश क्यों न हो? समझ में आया? असत्यार्थ, हेय व्यवहार उसके बिना उपादेय, अंगीकार करने लायक ऐसी आत्मा की चीज उसको अंगीकार करने योग्य नहीं है? व्यवहार कहता है, परमार्थ समझाता है तो क्यों अंगीकार नहीं करना? '**व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता? और व्यवहारनय कैसे...**' यहाँ थोड़ा शब्द में फ़र्क़ है। व्यवहार कैसे अंगीकार नहीं करना, ऐसा चाहिये।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- नहीं करना चाहिये। वह नहीं, उपदेश कैसे न हो, वह तो बराबर है। '**व्यवहारनय कैसे अंगीकार नहीं करना?**'

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वहाँ 'न' चाहिये। पुरानी प्रत में 'न' है। व्यवहारनय कैसे अगींकार नहीं

करना? इसमें ऐसा है कि व्यवहारनय कैसे अंगीकार करना? अंगीकार करने की तो ना कही है। उसके लिये तो शिष्य का प्रश्न है। व्यवहार कहे परमार्थ को और व्यवहार कैसे अंगीकार नहीं करना? क्यों न करना उसको? '**सो कहिये।**' उसका समाधान। समझ में आता है? प्राणभाई! यह पढ़ा है कि नहीं कभी अच्छे से? अच्छे से हाँ! ऊपर-ऊपर से कहो ऐसे नहीं। ना कहते हैं, आपके बदले दूसरे ना कहते हैं। सुन, कहते हैं।

'**समाधान :-- निश्चय से तो आत्मा परद्रव्यों से भिन्न,...**' भगवान आत्मा शरीर, वाणी, कर्म सब से भिन्न--जुदी चीज है। और '**स्वभाव से अभिन्न...**' अपना स्वभाव गुण-पर्याय आदि से वह वस्तु अभिन्न है। समझ में आया? परद्रव्य से आत्मा भिन्न है, परन्तु अपना स्वभाव गुण-पर्याय से अभिन्न है। '**स्वयंसिद्ध वस्तु है;...**' स्वयंसिद्ध अपने से है अनादि से स्वयंसिद्ध है। उसका बनानेवाला कोई नहीं है। द्रव्य का नहीं, गुण का नहीं और पर्याय का भी कोई बनानेवाला, रचनेवाला है नहीं। स्वयंसिद्ध वस्तु है।

'**उसे जो नहीं पहिचानते...**' उसे जो नहीं पहिचानते, किसको? कि परद्रव्य से भिन्न और अपना स्वभाव--शक्ति आदि से अभिन्न, इसको जो कोई नहीं पहिचानते '**उनसे इसी प्रकार कहते रहें तब तो वे समझ नहीं पाये।**' पर से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न, पर से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न (ऐसा कहते रहें) तो वह समझे नहीं। समझ में आया? '**इसलिये उनको व्यवहारनय से...**' जो हेय है, उपादेय नहीं है, असत्यार्थ है, झूठी है। समझ में आया? '**व्यवहारनय से शरीरादिक परद्रव्यों की सापेक्षता द्वारा...**' यह शरीर, देखो! नारकी का शरीर वह जीव, मनुष्य का शरीर वह मनुष्यजीव, देवजीव, ऐकेन्द्रिय जीव, दो इन्द्रिय जीव, वनस्पति जीव, पृथ्वी जीव--इसप्रकार शरीर की और वाणी की, देखो, यह छह पर्याप्ति बाँधी वह जीव, यह चार बाँधी वह जीव, यह भाषा बोले सो जीव। हैं? कहते हैं कि... आदि शब्द पड़ा है न? '**शरीरादिक परद्रव्यों की सापेक्षता द्वारा नर-नारक...**' नर मनुष्यजीव, नारकी जीव, देव जीव, तिर्यंच जीव, पृथ्वी जीव, पानी जीव, अग्नि जीव, वायु जीव, वनस्पति जीव, साधारण जीव, असाधारण जीव। साधारण, असधाराण समझते हैं न? धरमचंदजी! साधारण, असाधारण कौन? भगवान जाने। वनस्पति का दो भेद है न? साधारण और असाधारण। निगोद का जीव साधारण है। एक शरीर में अनंत हैं। और प्रत्येक शरीर नीम, पीपल आदि है, उसमें प्रत्येक असाधारण है। असाधारण नाम एक शरीर में दूसरा जीव नहीं। एक शरीर में एक उसको असाधारण अर्थात् प्रत्येक अथवा पृथक् और एक शरीर में अनंत उसको साधारण कहते हैं। लेकिन वह साधारण जीव,

असाधारण जीव यह तो व्यवहार से समझाने में आया। उस पर्याय की शरीर की सापेक्षता लेकर, वाणी की सापेक्षता लेकर, मन की सापेक्षता लेकर, लो न। संज्ञी लो, मनवाला जीव। यह मन बिना का जीव। शेठी! मनवाला जीव है? जीव तो जीव है। वह तो परद्रव्य से भिन्न और अपनी शक्ति से अभिन्न है, परन्तु व्यवहार से समझाये बिना परमार्थ समझा जाता नहीं।

'**जीव के विशेष किये...**' देखो, जीव के विशेष किये। '**तब मनुष्य जीव है, नारकी जीव है, इत्यादि प्रकार सहित उन्हें जीव की पहिचान हुई।**' ठीक, जीव है अन्दर में, वह जीव है, वह जीव है। शरीर नहीं, नारकी का शरीर नहीं, मनुष्य नहीं, देव नहीं, पृथ्वी-पानी का शरीर नहीं। '**अथवा...**' एक बात वह हुई। शरीर, वाणी, मन की सापेक्षता द्वारा जीव की पहिचान कराने में व्यवहार बीच में आये बिना रहता नहीं। इस कारण से व्यवहार से उपदेश किया है। समझाना है परमार्थ, जीव, पर शरीर से भिन्न यह समझाना है। इस कारण से व्यवहार हेय होने के बावजूद, असत्यार्थ होने के बावजूद, आदरणीय नहीं होने पर भी उपदेश में आये बिना रहता नहीं। दूसरा कोई उपाय नहीं, लोगों को समझना कैसे? एक बोल आया।

'**अथवा अभेद वस्तु में भेद उत्पन्न करके...**' देखो! भगवान आत्मा अभेद वस्तु, उसमें भेद नहीं है कोई कि ज्ञान कहीं रहता हो, दर्शन की रहता हो, चारित्र कहीं रहता हो, वीर्य कहीं रहता हो। असंख्य प्रदेश में अनंत गुण एकसाथ अभेद है। समझ में आया? अभेद वस्तु है, अखंड वस्तु है। शरीर, वाणी, मन, कर्म से भिन्न वस्तु अभेद (है)। उसमें '**भेद उत्पन्न करके ज्ञान-दर्शनादि गुणरूप जीव के विशेष किये,...**' बताया कि देखो भैया! जाननेवाला जीव, देखनेवाला जीव, शांति उसमें श्रद्धा--आस्तिक्य करता है न? आस्था किसको है? वह आस्था करनेवाला जीव, शांतिवाला जीव, समझे? ऐसा अभेद चीज में गुण का भेद और पर्याय का पृथक् भेद करके, मतिज्ञानी जीव, श्रुतज्ञानी जीव, केवलज्ञानी जीव, अवधिज्ञानी जीव (बताया है)। समझ में आया? शेठी सुनते हैं बराबर।

'**अभेद वस्तु में भेद उत्पन्न करके ज्ञान-दर्शनादि...**' गुण और पर्यायरूप '**जीव के विशेष किये,...**' देखो! अचक्षुदर्शन की पर्याय वह जीव, चक्षुदर्शन की पर्यायवाला जीव, अवधिदर्शन की पर्यायवाला जीव (ऐसा) भेद करके बताया। समझ में आया? '**तब जाननेवाला जीव है, देखनेवाला जीव है;--इत्यादि प्रकार सहित...**' प्रकार लिये, लिये माने क्या कहते हैं? इत्यादि प्रकार लिये, हमारी गुजराती भाषा में क्या? '**इत्यादि प्रकार सहित उनको जीव की पहिचान हुई।**' उसको पहिचान हुई कि हाँ, वह आत्मा, वह आत्मा। समझ में आया?

तीसरी बात। दो बातु हुई। व्यवहारनय असत्यार्थ होने पर भी समझाने में आता है परमार्थ, इस कारण व्यवहार आये बिना रहता नहीं। परन्तु अंगीकार करने लायक नहीं है। तीसरी बात, '**तथा निश्चय से वीतरागभाव मोक्षमार्ग है,...**' निश्चय नाम सत्यार्थ से देखो तो वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है। राग, पुण्य, विकल्प, व्रत, नियम का विकल्प या शरीर की क्रिया कोई मोक्षमार्ग है नहीं। '**निश्चय से वीतरागभाव...**' शुद्ध चैतन्यप्रभु समस्वभावी अविकारी ऐसी दृष्टि, ज्ञान और रमणता वही एक वीतरागभाव ही एक मोक्षमार्ग है, दूसरा कोई मोक्षमार्ग है नहीं, तीन काल तीन लोक में।

'**उसे जो नहीं पहिचानते...**' वीतरागभाव मोक्षमार्ग, वीतरागभाव मोक्षमार्ग, वीतरागभाव मोक्षमार्ग इसमें न समझे, '**उनको ऐसे ही कहते रहें तो वे समझ नहीं पाये।**' समझ में आया? यह चीज बहुत ऊँची है! व्यवहार और निश्चयावलम्बी की बात पंडितजी ने ऐसी निकाली है कि मिथ्यादृष्टि दो को समझते नहीं, निर्धार करते नहीं और हमें दोनों समान सत्यार्थ है। दोनों समान और सत्यार्थ है। दो शब्द लिये हैं, कल आया न? वह कहते हैं, दूसरे लोग कहते हैं अभी, नहीं, दोनों नय समकक्षी है, दोनों समान है, दोनों बराबर है। दोनों में एक हिन या एक अधिक ऐसा कोई नहीं है। समझ में आया? उपादान निमित्त में कोई उपादान अधिक है और निमित्त कोई कम है ऐसी बात न लेना। आता है?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- उसमें लेना, लेकिन ये तो भाग पाड़ते हैं कि नहीं, निमित्त भी बराबर पूर्ण है और उपादान भी पूर्ण है। दोनों में उपादान अधिक और निमित्त कम... भाई! आता है न? टेप रेकोर्डिंग में। उसमें वह आया है कि, नहीं, दोनों बराबर लेना। समझ में आया? नहीं, निश्चय-व्यवहार बराबर लेना कहो कि उपादान-निमित्त बराबर लेना एक ही बात है। हेमराजजी! वह उसमें आता है। समझ में आया? कहते हैं कि नहीं, दो समान नहीं, दो सत्यार्थ नहीं, दो अंगीकार करने लायक नहीं, दो मार्ग नहीं। समझ में आया? उपादान-निमित्त कार्य में भी दो समतोल रखना। उसका प्रतिशत ऐसा और इसका प्रतिशत हिन ऐसा नहीं रखना। कौन रखे? सुन तो सही। अपनी पर्याय का कार्यकाल में अपनी पर्याय होती है तो निमित्त है, उसमें प्रतिशत कहाँ-से आया कि निमित्त है तो कार्य होता है? ऐसे व्यवहार है तो निश्चय होता है ऐसा है नहीं। जैसे निमित्त हो तो उपादान है, व्यवहार हो तो निश्चय है, दोनों एक ही बात है। समझ में आया? कहते हैं...

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हो, दूसरी बात है, हो तो होता ही है। निमित्त है, व्यवहार विकल्प

व्रतादि शरीर की क्रिया भी हो, हो उसमें क्या है? लेकिन वह कोई आदरणीय है और वह है तो उससे अन्दर निश्चयमोक्षमार्ग होता है ऐसा नहीं है। एक जीव है तो दूसरा जीव है ऐसा है? एक जीव है तो दूसरा जीव है ऐसा है? ऐसे व्यवहार है तो निश्चय है ऐसा है? दोनों एक ही बात है। समझ में आया?

कहते हैं कि '**वीतरागभाव मोक्षमार्ग है, उसे जो नहीं पहिचानते उनको ऐसे ही कहते रहें तो वे समझ नहीं पायें। तब उनको व्यवहारनय से, तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक...**' व्यवहारनय से। समझ में आया? क्या व्यवहारनय से? तत्त्वश्रद्धान और ज्ञानपूर्वक। व्यवहारनय से श्रद्धा तत्त्वार्थ और व्यवहारनय से तत्त्वज्ञान ऐसा है उसमें अर्थ? पढ़ो तो सही क्या है? ऐसा कहते हैं,.. यहाँ तो व्यवहार के व्रतादि की व्याख्या करनी है न। तो व्यवहारनय से, बस इतना। '**तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक...**' निश्चय तत्त्वश्रद्धान और ज्ञानपूर्वक। 'व्यवहारनय से' (कहा वह) तो वहाँ रखना। बाद में निश्चयनय से तत्त्वश्रद्धान और ज्ञानपूर्वक। निश्चय से सम्यग्दर्शन हुआ हो, निश्चय से सम्यक्ज्ञान हुआ उसको, अब कहते हैं, व्यवहारनय से '**परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा...**' व्यवहारनय यहाँ लगाना।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- व्यवहारनय... फिर तत्त्वश्रद्धान-ज्ञान वह निश्चय है। सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान हुआ, उस पूर्वक व्यवहारनय से उसको व्रत कैसा है और ऐसी क्रिया से निश्चय समझाना है। समझ में आया? व्यवहारनय से तत्त्वश्रद्धान ऐसे नहीं।

यहाँ तो मोक्षमार्ग के तीसरे बोल की बात चलती है न। तो मोक्षमार्ग में जब व्रतादि को कहना वह व्यवहार आया। लेकिन कहते हैं कि, कहना किसको? कि जिसको तत्त्वश्रद्धान सम्यग्दर्शन हुआ है। मेरी चीज रागरहित शुद्ध पूर्णानंद है ऐसी दृष्टि हुई है और तत्त्वज्ञान हुआ है। सम्यक्ज्ञान--ज्ञान का वेदन में ज्ञान हूँ, ऐसा भान हुआ है। उसको व्यवहारनय से '**परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा...**' व्रत में इतना-इतना लक्ष्य छूटता है न पर का? वह तो व्यवहार है, हाँ! परद्रव्य की क्रिया का त्याग, अत्याग आत्मा में है नहीं। परन्तु परद्रव्य का निमित्त... अव्रत में परद्रव्य का लक्ष्य बहुत है। व्रत होता है तो परद्रव्य से लक्ष्य हटता है, इतना देखकर '**परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा व्रत, शील, संयमादिरूप वीतरागभाव के विशेष बतलाये;...**' वास्तव में उसका विशेष है नहीं, लेकिन उसका भेद करके वीतराग मोक्षमार्ग है उसको दिखाया कि भैया! ऐसा व्रत, ऐसी क्रिया, ऐसा हो वहाँ वीतरागमार्ग होता है। वीतरागमार्ग है, लेकिन उससे नहीं। समझ में आया? '**तब उन्हें वीतरागभाव की पहिचान हुई।**' हाँ, ओहो..! ऐसी चीज हो, जहाँ संयम हो, व्यवहार हो, व्रत

हो वहाँ अन्दर वीतरागभाव हुआ तो उसको व्यवहार कहने में आता है और वह व्यवहार है वह निश्चय को समझाता है। अंतर वस्तु निश्चय निर्विकल्प वीतराग श्रद्धा, ज्ञान और रमणता। समझ में आया?

'**इसी प्रकार अन्यत्र भी व्यवहार बिना...**' यहाँ दृष्टान्त दिये, तीन। इसके सिवा जहाँ-जहाँ शास्त्र में चला हो.. समझ में आया? '**इसी प्रकार अन्यत्र भी व्यवहार बिना निश्चय के उपदेश का न होना जानना।**' कहो। गुरु का उपदेश सुनो तो ज्ञान होगा, वीतराग की वाणी सुनो तो ज्ञान होगा। समझ में आया? शास्त्र का वाँचन किये बिना ज्ञान नहीं होगा। समझ में आया? ऐसी व्यवहार की कथनी आती है। अंतर में उसका ज्ञान प्रगट हो, वह समझाने को यह बात कहने में आती है। समझ में आया? दिव्यध्वनि से ज्ञान हुआ, भगवान की दिव्यध्वनि निकली और गणधर ने बारह अंग की रचना की, वह सब व्यवहार से परमार्थ समझाने की बात है। गणधर की लब्धि तो अपने से प्रगट हुई है। अंतर्मुहूर्त में बारह अंग, चौदह पूर्व की रचना (करते हैं)। समझ में आया?

शास्त्र में ऐसा उपदेश आवे, लो। भक्ति में आता है न? भक्ति में। 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां' आता है कि नहीं?

उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां,
करकमलमां कृपा अनंत उभराय जो।

करकमल में, हृदयकमल में अनंत कृपा उभरती है। करकमल। 'प्रभु त्यां ऊपजे लब्धि अनंत जो।' लो, भक्ति में ऐसा आता है। सुनी है भक्ति कभी? भगवान का हाथ जिसके सर पर पड़े (उसे) लब्धि उत्पन्न हो जाय। धन्नालालजी! वह आता है। वह तो सब व्यवहार से समझाते हैं। लब्धि भगवान से ऊपजे तो भगवान के समवसरण में सब केवलज्ञान प्राप्त कर ले और सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ले। परन्तु व्यवहार से, निमित्त से ऐसा कथन करके उसको जो लब्धि उत्पन्न हुई है उसको बताते हैं। समझ में आया? बहुत बोल, तीन-चार आते हैं न? हिंमतभाई! आते हैं कि नहीं? 'हृदयकमळमां दया अनंत उभराय जो।' करकमळमां, चरणकमळमां भक्तिरस हेले चडे, ऐसा आता है, सब थोड़ा ही याद रहता है। चरणकमल में इन्द्रों आकर भक्ति करते हैं। आहाहा..! लो, चरण कहाँ, चरण-पैर तो जड़ हैं। उसमें वह भाव आया तो समझ में आया (तो कहते हैं), भगवान के चरणकमल की भक्ति की तो बेड़ा पार हो गया। वह व्यवहार से परमार्थ समझाने का कथन है। समझ में आया?

'**तथा वहाँ व्यवहार से नर-नारकादि पर्यायही को जीव कहा,...**' नर के शरीर की पहिचान करवाई न कि यह मनुष्य का शरीर, यह देव का शरीर, यह जीव,

यह जीव, यह जीव, यह जीव। यह गाय निकलती है, यह गाय का जीव, यह घोड़े H$m Ord, H$/mm H$m Ord Eg m H$hZo '| A m/m h¡ Z? "**वहाँ व्यवहार से नर–नारकादि पर्यायही को जीव कहा,...**' पर्याय यानी शरीर। '**सो पर्यायही को जीव नहीं मान लेना।**' पर्याय को (जीव) न मानना, वह तो समझाने की बात की है। देखो! श्रोता को भी यह कहते हैं, दोनों को, हाँ! ऐसा नहीं कि वक्ता को व्यवहारनय अनुसरना और श्रोता को व्यवहारनय अनुसरना ऐसा नहीं।

'**पर्याय तो जीव–पुद्गल के संयोगरूप हैं।**' ये तो शरीर और आत्मा दोनों भिन्न चीज है। उसे ऐसा कहने में आये कि यह शरीरवाला आत्मा, वाणीवाला आत्मा, पर्याप्तिवाला आत्मा। पर्याप्तिवाला ऐसा कहते हैं न? हैं? '**वहाँ निश्चय से जीवद्रव्य भिन्न है,...**' देह में भगवान आत्मा बिलकुल जुदा, बिलकुल जुदा। उसको और इसे कोई सम्बन्ध है नहीं। निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध से उसकी पहिचान करायी परन्तु कोई सम्बन्ध नहीं है। कहाँ चैतन्य अपनी पर्याय में परिणमन करनेवाला, कहाँ परमाणु उसही क्षेत्र में अपनी पर्याय में परिणमन करनेवाला। एक समय में दो पर्याय भिन्न–भिन्न क्षेत्र में अपना काल से अपने में होती है। किसी के कारण से कोई कभी होता नहीं। शरीर चलता है तो आत्मा की पर्याय अपने से चलती है और शरीर की पर्याय उससे चलती है। दोनों का भिन्न–भिन्न कार्य समय–समय में हो रहा है। शरीर से भिन्न आत्मा बिलकुल है। '**भिन्न है, उसही को जीव मानना।**' एक बात।

'**जीव के संयोग से शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा,...**' जीव का सम्बन्ध है न, शरीर को जीव का सम्बन्ध। शरीर, वाणी, मन को भी जीव कहा। '**सो कथन मात्र ही है,...**' कहने मात्र ही है। समझ में आया? एक बात। '**परमार्थ से शरीरादिक जीव होते नहीं––ऐसा ही श्रद्धान करना।**' परमार्थ से शरीर जीव होता नहीं ऐसा श्रद्धान करना। एक बात हुई। तीन बातमें से एक शरीर सापेक्ष से बात कही। अब गुणभेद से बात करते हैं।

'**तथा अभेद आत्मा में ज्ञान–दर्शनादि भेद किये,...**' यह ज्ञान, यह दर्शन आत्मा ऐसा भेद किया। '**सो उन्हें भेदरूप ही नहीं मान लेना,...**' भेदरूप कहाँ है? लो, यह सुखड़ की लकड़ी है। उसमें सुगंध, मुलायमता, वज़न उसमें भिन्न–भिन्न है? वह तो साथ में ही है, अभेद है। मुलायमता, वज़न, समझे? सुगंध सब एकसाथ है, लेकिन समझाने को (कहते हैं), देखो भैया! सुगंध है सो सुखड़। अभेद में भेद करके बताया। ऐसे भगवान आत्मा (में) अनंत ज्ञान, दर्शन (आदि) गुण एकसाथ अविनाभाव आत्मा में रहे हैं। उसको भेदरूप करके ज्ञान, दर्शन, आनंद पर्याय बताया। उनको भेदरूप ही नहीं जान लेना। आत्मा में कोई गुण और पर्याय जुदा नहीं है। अभेद वस्तु अखंड

वस्तु है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह दूसरी बात है। उसमें क्या? द्रव्याश्रित गुण है, गुण द्रव्य के आश्रय से (रहते हैं) ऐसा कहा। कोई गुण जुदा और द्रव्य जुदा ऐसा है? अभेद ही है वस्तु। वह तो गुण का लक्षण बताया कि गुण कहाँ रहते हैं? द्रव्य के आश्रय से। गुण भिन्न है, द्रव्य भिन्न है, गुण भिन्न है, पर्याय भिन्न है ऐसा नहीं। गुण से देखो तो पूरा द्रव्य, पर्याय से देखो तो वही द्रव्य, द्रव्य से देखो तो वही द्रव्य है। समझ में आया? भेद तो समझाने के लिये हैं। ज्ञान, दर्शन, आनंद समझाने के लिये है। द्रव्य से जुदा नहीं है। द्रव्याश्रय गुण, वह भी भेद से कथन करके समझाया है। समझ में आया? आधार-आधेय भेद पाड़ना भी व्यवहार है।

'**निश्चय से आत्मा अभेद ही है;...**' निश्चय से अभेद, वह क्या? अभेद का अर्थ क्या? गुण और पर्याय से अभेद है। कोई गुण भिन्न-भिन्न है नहीं। गांधी की दुकान में होता है न? क्या कहते हैं? धनिया, जीरा मसाला रखते हैं कि नहीं, लकड़ी में खाना (--विभाग) करके? जुदा-जुदा विभाग करके (रखते हैं), ऐसे आत्मा में विभाग है? एक विभाग में ज्ञान और दूसरे विभाग में दर्शन और तीसरे विभाग में चारित्र। हैं? उसमें तो भिन्न है। अखंड है। असंख्य प्रदेशी अनंत गुणव्यापक, एक प्रदेश में अनंत गुण, ऐसे सर्व प्रदेश में अनंत गुण व्यापक अभेद वस्तु है। वह तो भेद करके नहीं समझता है तो समझाने को कहा है।

'**उसही को जीववस्तु मानना।**' अभेद को। '**संज्ञा-संख्यादि से भेद कहे...**' संख्या कही न? जीवद्रव्य एक, गुण अनंत, पर्याय अनंत ऐसा संख्या से (भेद कहा)। संज्ञा--नाम जुदा पड़ा। जीव का द्रव्य का नाम जीव, गुण का नाम गुण, पर्याय का नाम पर्याय। ऐसे '**भेद कहे सो कथन मात्र ही है;...**' भेद-बेद अन्दर है नहीं। संज्ञा, संख्या समझे? संज्ञा, संख्या किसे कहते हैं? संज्ञा नाम नाम। जैसे जीव नाम, ज्ञान नाम, पर्याय नाम, ऐसे नाम से भेद से कहा, वस्तु में तो भेद है नहीं। '**संख्यादि से भेद कहे सो कथन मात्र ही है; परमार्थ से भिन्न-भिन्न है नहीं,--ऐसी ही श्रद्धान करना।**' भिन्न-भिन्न नहीं है ऐसा श्रद्धान करना।

'**तथा परद्रव्य का निमित्त मिटाने की अपेक्षा से व्रत-शील-संयमादिक को मोक्षमार्ग कहा,...**' जितना-जितना परद्रव्य छूटे उतना-उतना मोक्षमार्ग व्यवहार से कथन निमित्त से कहने में आया। '**सो इन्हीं को मोक्षमार्ग नहीं मान लेना;...**' स्त्री, कुटुम्ब छूटा, ऐसा छूटा, धंधा छूटा, फलाना छूटा ऐसा कहते हैं न? इतनी तो निवृत्ति मिली। कहाँ है निवृत्ति? उसमें कहाँ निवृत्ति थी? वह तो निमित्त से समझाया।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- निमित्त पर लक्ष्य जाता है। मिटाना माने मिटाना। भाषा व्यवहार से क्या आये? निमित्त को कहाँ मिटाना है? परन्तु इतना-इतना अव्रत में परद्रव्य पर बहुत लक्ष्य जाता है, व्रर में अल्प द्रव्य पर कम में जाता है, उतना परद्रव्य का लक्ष्य छूटा, इस अपेक्षा से शरीर की क्रिया भी ऐसी हुई। समझ में आया? विषयकषाय, पैसा रखना, हाथ से ऐसा लेना वह सब छूट गया। समझ में आया? छूरी से सब्जी काटता था, ऐसा करता था, फलाना करता था, बोलता था कि लाओ सब्जी, दो काम, वह सब अटक गया। वह निमित्त की मिटने की अपेक्षा से व्रतादि को... समझे न? मोक्षमार्ग नहीं मान लेना। कहा, लेकिन मान नहीं लेना।

'**क्योंकि परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जाये।**' देखो, महासिद्धांत। परद्रव्य एक रजकण को भी मैं ग्रहूँ और छोडुँ निमित्त की अपेक्षा से उसको लिया, आत्मा में है ही नहीं। परद्रव्य का ग्रहण करना और छोड़ना आत्मा में हो तो आत्मा पर को ग्रहण करे, छोड़े, ग्रहण करे और छोड़े, जड़ हो जाये, परद्रव्यमय हो जाये। पर का ग्रहण कर्ता और छोड़ना आत्मा में है ही नहीं। '**परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जाये।**' लो, पर की दया पाली, उसनें हिंसा छोड़ दी, धंधा छोड़ दिया, ऐसा छोड़ दिया, जौहरी का धंधा छोड़कर शेठी यहाँ बैठे, ऐसा सब व्यवहार कहने में आता है।

मुमुक्षु :-- लोच करते हैं।

उत्तर :-- लोच करते हैं, बोलता है, भाषा ऐसी है, फलाना है, लोच किया लोच, क्या लोच करे? कौन करे? वह तो जड़ की क्रिया है। वह क्या आत्मा से होती है? समझ में आया? ओहो..! बड़ा साधु हाँ! व्यवहार से समझाने में आता है। विहार किया इतना, ओहोहो..! पाँच उपवास, छः उपवास, पंद्रह उपवास किये फिर भी दस गाउ चलते हैं, सुबह दस गाउ, शाम को दस गाउ। वह तो सब चले कौन और रखे कौन? वह तो पर की क्रिया है। उसमें उग्रता पुरुषार्थ क्या है उसे समझाने के लिये बात करने में आयी। उस क्रियाकांड से धर्म है ऐसा मान लेना नहीं। समझ में आया?

'**कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं;...**' देखो! एक परमाणु दूसरे परमाणु के आधीन नहीं, एक जीव दूसरे परमाणु के आधीन नहीं, एक जीव दूसरे जीव के आधीन नहीं, एक परमाणु दूसरे परमाणु के आधीन नहीं। स्वतंत्र है सब। इसे रखकर हर जगह अर्थ करना कि नहीं? वहाँ ऐसा आये, लो, यहाँ हुआ, नदी

के प्रवाह में बह गया, ऐसा हुआ, वैसा हुआ, फलाना हुआ.. लेकिन सुन तो सही, यह बात रखकर वहाँ (बात) है कि दूसरी बात है? समझ में आया? नदी के प्रवाह में चला गया, देखो जोर! ऐसे कर्म के जोर में चला गया, देखो कर्म का जोर।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- आया था न। लेकिन वह तो निमित्त-नैमित्तिक का कथन है। समझ में आया? वस्तुस्थिति नहीं। वह तो अपने पुरुषार्थ की कमी से वहाँ चला जाता है। और अपने पुरुषार्थ की कमी से रुकता है, नहीं कि पर के, कर्म के कारण से रुका है। सब बात झूठ है। समझ में आया? मतिज्ञान क्यों नहीं खिलता? कि हमारा ज्ञानावरणीय का जोर है, ऐसा कहे।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, कहने में आता है। ऐसा है नहीं। अपनी पर्याय में हिनरूप परिणमता है ज्ञानावरणीय को निमित्तरूप से उदय कहने में आया है। दूसरी कोई बात है नहीं। ज्ञानावरणीय परद्रव्य अपने ज्ञानगुण की पर्याय को हरे, करे, लूटे, तीन काल में बने नहीं।

मुमुक्षु :-- कर्ता, हर्ता...

उत्तर :-- कर्ता, हर्ता.. देखो कहा न। वह कहता है, नहीं, ज्ञानावरणीय कर्म कुछ करता नहीं ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्यों है? नहीं, झूठ है, ऐसा नहीं है। ज्ञानावरणीय न हो तो हिनाधिक पर्याय अपने में होती नहीं। इसलिये कर्म के कारण से हिनाधिक पर्याय है। आया है कि नहीं? आहाहा..! अरे..! ये तो मार्ग की लूट चली है। समझ में आया? सोनगढ़वाले कहते हैं, नाम लिया था शरीर का, वे कहते हैं कि ज्ञानावरणीय कुछ करता नहीं, वह तो अपनी योग्यता से ज्ञान की हिनता और अधिकता होती है, क्या सत्य है? क्या ठीक है? क्या ठीक है, अंगधारी कहे तो भी ठीक नहीं है। आहाहा..! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि '**कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं,...**' और कोई आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता है नहीं। यह तो आत्मा से लिया तो परद्रव्य का कर्ता लिया। बाकी सामान्य सिद्धांत लिया। पहले आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता नहीं ऐसा लिया, बाद में सामान्य सिद्धांत लिया--कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं। अर्थात् कर्म के आधीन आत्मा नहीं, आत्मा के आधीन कर्म नहीं, शरीर के आधीन आत्मा नहीं, आत्मा के आधीन शरीर नहीं। सब अपनी-अपनी पर्याय के काल में स्वतंत्र है। कहो, समझ में आया?

'**इसलिये आत्मा अपने भाव रागादिक हैं...**' देखो! अपने में राग-द्वेष आदि

भाव है '**उन्हें छोड़कर...**' समझाना है न? '**वीतरागी होता है;...**' पर को क्या छोड़ना? ऐसा कहते हैं। स्त्री छोड़ी, कुटुम्ब छोड़ा, धंधा छोड़ा, व्यापार छोड़ा, ऐसा छोड़ा, आहार छोड़ा, पानी छोड़ा, दूध छोड़ा, रस छोड़ा। समझ में आया? क्या छोड़े? वह तो निमत्त का कथन से समझाया कि जितनी चीज छूटी उतना राग घट गया है, उतना बताने को बात कही। परन्तु पर का ग्रहण-त्याग आत्मा में है नहीं। समझ में आया? तो आत्मा करता है क्या?

'**इसलिये आत्मा अपने भाव रागादिक हैं उन्हें छोड़कर...**' वह भी व्यवहारनय से बात है। समझे? वह छूटती नहीं है और यह छूटती है इतनी अपेक्षा। इतना भेद बताने को। परवस्तु कहीं छूट नहीं जाती, और यह छूटता है, स्वभाव की एकाग्रता से छूटता है, उस अपेक्षा से छोड़ता है और वीतरागभाव करता है ऐसा कहने में आया।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह तो कथनशैली तो कहे न। पर का ग्रहण-त्याग नहीं है इतना बताना है और राग का त्याग और राग का ग्रहण करता है अथवा स्वभाव का ग्रहण और राग का त्याग इतना करता है। पर का ग्रहण-त्याग करे ऐसा तीन काल तीन लोक में इन्द्र में भी ताकात है नहीं। इन्द्र की ताकात नहीं कि दुनिया का कोई रजकण बदल दे। समझ में आया?

'**रागादिक है उन्हें छोड़कर वीतरागी होता है; इसलिये निश्चय से वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है।**' निश्चय से तो... लो, वापस आया, वीतरागभाव ही, ही मोक्षमार्ग है। राग, पुण्य विकल्प आता है वह मोक्षमार्ग नहीं। इतनी स्पष्ट बात पंडितजी भी शास्त्रमें से निकालकर बताते हैं, तो कहते हैं, नहीं, वह नहीं। वह निश्चय की बात करते हैं, व्यवहार दूसरा रह जाता है। अभी देवी, देव को मानना, इसको मानना, पद्मावती और क्या कहते हैं...? कालिका, कालिका है न? अरे..! कालका-फालका क्या? मुनि है क्या? ख्याल है। समझ में आया? अरे..! देवी तो तेरी सरस्वती ज्ञानदेवी अन्दर पड़ी है। सब शक्तियाँ आत्मा की देवी है। पर में देवी-फेवी है नहीं। जैन होकर ऐसे देव-देवी को मानना, बड़ी भ्रमणा, भ्रमणा, भ्रमणा। समझे? क्षेत्रपाल और क्या कहते हैं?

मुमुक्षु :-- ...आहवानन होता है।

उत्तर :-- आह्वानन होता है, वह तो हम भक्ति करते हैं, तुम भी आओ, इतना है। हमारे साथ तुम भक्ति करो, ऐसा है। हम भगवान की भक्ति करते हैं तो हमारा सब समाज आकर भक्ति करो। वह बात है, उसमें क्या है?

मुमुक्षु :-- बुलाते हैं...

उत्तर :-- बुलाते हैं उसका अर्थ यह। भावना विशाल हो गयी है तो हम भक्ति करते हैं तो सब देवलोक भी भक्ति करो। उसमें देव की प्रतीति आयी और देव भी साथ में तो सब परमात्मा की भक्ति करें, वह बात बताते हैं। क्या देव का आदर करना है? समझ में आया? ऐसी बात है नहीं। देवी-देव, क्षेत्रपाल और पद्मावती.. कौन जाने ऐसी विपरीतता घुस गयी है न। पद्मावती सपने में आये, ऐसा कह जाये। अरे..! तेरा आत्मा है कि नहीं पद्मावती?

मुमुक्षु :-- ऐसे दिल्ही में बुलाते हैं तो..

उत्तर :-- जपे, जप.. औरतें भी ऐसी है। कौन निठल्ली है वहाँ? और हो तो भी देवी है अमुक जात की, उसमें आत्मा को क्या? उसमें आदर करने का क्या है? समझ में आया? ये तो देरासर में उसको धराना, घाघरा बराबर पहनाना, घाघरा पहिनाते हैं न? कपड़ा, बड़ा कपड़ा। एक गाँव में गये थे, भगवान तो कहीं छीप गये थे, चारों ओर देवियों का घाघरा दिखे। घाघरा कहते हैं न? क्या कहते हैं? बहुत वह दिखे। अरे..! आप जैन होकर, दिगंबर होकर ये क्या करते हो? भगवान तो एक ओर पड़े रहे। चारों ओर कपड़ा, कपड़ा, देवियाँ, देवियाँ कितनी जाति की देवियाँ। अरेरे..! उसे यह मोक्षमार्ग कहाँ समझ में आये? उसे शरीर से भिन्न आत्मा, कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्ता-हर्ता है नहीं, देवी क्या करे? आत्मा का पुण्य बिना कोई आ सकता है? और पाप बिना कोई विघ्न कर सकता है? तीन काल में नहीं। अरे..! बाहर में विघ्न हो वह विघ्न कहाँ है? अंतर में विघ्न करने की किसी की ताकात नहीं है। बाहर में तो कोई पाप का उदय हो तो प्रतिकूल हो, आ जाओ तो उसमें आत्मा को क्या है? सातवीँ नर्क में इतनी प्रतिकूलता है तो भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। सातवीँ नर्क में सम्यग्दर्शन नया अनंत काल में नहीं पाया ऐसा पाते हैं। प्रतिकूलता क्या करे? और अनुकूलता भगवान के समवसरण में मिथ्यादृष्टि होकर बाहर निकल जाती है। वह अनुकूलता और सातवीँ नर्क की प्रतिकूलता। कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्ता-हर्ता है नहीं। समझ में आया?

'**वीतरागभावों के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारणपना है,...**' कदाचित्। पूर्ण वीतराग केवली हो गये उनको तो कदाचित् कार्य-कारणपना उसमें नहीं है। नीचे की दशा में व्रत का विकल्प है और निमित्त शरीरादिक क्रिया (हो), उसमें कार्य-कारणपना निमित्त से है। कदाचित् कहा है, हाँ! पूर्ण को होता नहीं। समझ में आया? व्रतादिक को कदाचित् किसे? वीतरागभावों के और व्रतादिक के, कहाँ तक? साधक है तब तक। परन्तु वीतरागभाव पूर्ण हो गया तो व्रतादिक का निमित्त भी है नहीं।

व्रतादिक के और वीतराग भावों के कदाचित्, जब तक साधक है तो वहाँ ऐसा विकल्प उठता है, देह की क्रिया भी हो जाती है।

'**इसलिये व्रतादि को मोक्षमार्ग कहे सो कथनमात्र ही है,...**' कहने मात्र है, व्रतादिक या शीलादिक क्रिया कथनमात्र है। जैसे शरीर को आत्मा को कथन मात्र कहा, वैसे यह व्यवहार को मोक्षमार्ग कहना कथन मात्र है। सर्वत्र यह अर्थ करना। तीनों जगह तीनों कथन मात्र (कहा)। एक शरीर को आत्मा कहा वह कथन मात्र, एक ज्ञान, दर्शन से भेद करना वह कथन मात्र, वैसे वीतरागभाव में यह विकल्प आदि जो निमित्त है उसको कहा वह कथन मात्र है, वस्तु स्वरूप ऐसा है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- कहा, दो बार कहा न। आप का ख्याल न रहा। वीतरागभाव सर्वज्ञ को हो उनको तो निमित्त-नैमित्तिक कारण-कार्य है नहीं। परन्तु कदाचित् कहा (है)। (अर्थात्) नीचे की दशा में निश्चय भी वीतराग भाव का श्रद्धा-ज्ञान है और कहीं व्रतादिक का विकल्प और शरीर की क्रिया भी नीचे है। ऊपर नहीं, वीतराग हो वहाँ व्रतादि होते हैं ऐसा नहीं। समझे? इसलिये 'कदाचित्' शब्द पड़ा है न।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, नीचे चौथे, पाँचवे, छठवें आदि में हो, तो उसको राग है उतनी क्रिया निमित्त में (होती है) और वीतराग भाव, जितनी दृष्टि आदि हो वह वीतराग भाव है, उसको तो कारण-कार्य व्यवहार से कहने में आता है कि यह व्यवहार कारण और यह कार्य। ऊपर अकेला वीतरागभाव हो वहाँ तो व्रत है नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह तो सवाल ही कहाँ है पहले का।

'**इसलिये व्रतादि को मोक्षमार्ग कहे सो कथनमात्र ही है, परमार्थ से बाह्यक्रिया मोक्षमार्ग नहीं है...**' बाह्यक्रिया मोक्षमार्ग तीन काल में नहीं है, लो। '**ऐसा ही श्रद्धान करना।**' ऐसा ही श्रद्धान करना। तीनों में ऐसा लिया है--ऐसा ही श्रद्धान करना। शरीर सापेक्ष बात कही परन्तु शरीर से भिन्न है ऐसा श्रद्धान करना, ज्ञान-दर्शन भेद से समझाया परन्तु भेद नहीं है ऐसा श्रद्धान करना, व्रतादि की क्रिया मोक्षमार्ग नहीं ऐसा श्रद्धान करना। कितनी बात कही है। '**इसीप्रकार अन्यत्र भी व्यवहारनय का अंगीकार नहीं करना ऐसा जान लेना।**' '**इसीप्रकार अन्यत्र भी व्यवहारनय का अंगीकार नहीं करना ऐसा जान लेना।**' कोई ठिकाने व्यवहार अंगीकार करना नहीं। 'न' शब्द चाहिये। पुरानी (आवृत्ति में) नहीं है। मूल पाठ में है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- उसमें भी आता है। '**अन्यत्र भी व्यवहारनय का अंगीकार नहीं करना ऐसा जान लेना।**' अर्थात् व्यवहारनय आदरणीय है नहीं, ऐसा जान लेना। वह तो पहले ऐसा अर्थ करते थे, यहाँ नहीं था इसलिये। फिर 'न' (शब्द) निकला उसके बाद... मूल प्रत में निकला, मूल में है, टोडरमल की मूल प्रत है न, हस्ताक्षर की प्रत में 'न' पड़ा है। उसका फोटो ले लिया है, पूरे मोक्षमार्गप्रकाशक का मुंबई में फोटो ले लिया है, अपनी ओर से। तीन प्रत ली है। एक प्रत यहाँ रखी है, एक मुंबई, एक यहाँ रखी है, एक जयपुर दे दी, रक्षा के लिये। तीन बनाया। अक्षरशः फोटो ले लिया है, मुंबई में। अक्षर सुरक्षित रहे। उसका पाठ है न? वह सुरक्षित रहे। समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत संक्षेप में सब का खुलासा सादी भाषा में (किया है)। ऐसा तो श्वेतांबर में एक शास्त्र भी ऐसा नहीं है कि जिसमें से ऐसी बात निकले।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- साधु ने बनाया उसमें एक भी ऐसा शास्त्र नहीं है। दृष्टि फेर...

'**यहाँ प्रश्न है कि व्यवहारनय पर को उपदेश में ही कार्यकारी है या अपना भी प्रयोजन साधता है?**' दूसरा प्रश्न। जब व्यवहारनय पर को उपदेश देने में ही कार्यकारी है न? उपदेश देना इतना ही न? अपना भी प्रयोजन साधता है कि नहीं? व्यवहार से अपना प्रयोजन साधना उससे कुछ होता है कि नहीं?

'**समाधान :-- आप भी जब तक निश्चय से प्ररूपित वस्तु को न पहिचाने...**' न पहिचाने, हाँ! वहाँ वज़न है। '**तब तक व्यवहारमार्ग से वस्तु का निश्चय करे,...**' निश्चय पाले ऐसी बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो जब तक वस्तु स्वरूप जो निश्चय है, शरीर से भिन्न, अभेद गुण अभेद शक्ति, वीतरागमार्ग इत्यादि ऐसा न पहिचाने तब तक व्यवहारमार्ग से विकल्प द्वारा उसक--वस्तु का निश्चय करना। निर्विकल्प वस्तु एकदम समझ में न आये तो उसे विकल्प द्वारा निर्णय करना।

मुमुक्षु :-- आदरना नहीं।

उत्तर :-- आदरणीय नहीं है। वह तो कहते हैं, यहाँ अभी कहेंगे।

'**इसलिये निचली दशा में अपने को भी व्यवहारनय कार्यकारी है;...**' किसमें कार्यकारी? नक्की करने में, पहिचानने में ऐसा कहते हैं। '**प्ररूपित वस्तु को न पहिचाने तब तक व्यवहारमार्ग से वस्तु का निश्चय करे,...**' वस्तु को पहिचाने ऐसी '**निचली दशा में अपने को भी...**' अपना विकल्प से निश्चय करे, ऐसी अपेक्षा से व्यवहार से कार्यकारी कहने में आया है। '**परन्तु व्यवहार को उपचारमात्र मानकर...**'

देखो! विकल्प से निर्णय किया वह तो उपचारमात्र है, शास्त्र से निर्णय किया और पर से निर्णय किया वह सब तो उपचार से है। समझ में आया? '**व्यवहार को उपचारमात्र मानकर उसके द्वारा वस्तु को ठीक प्रकार...**' उसके द्वारा निश्चय जैसी चीज है ऐसा निश्चय करे तो व्यवहार से कार्यकारी कहने में आता है।

'**परन्तु यदि निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानकर...**' वह भी निश्चयवत् व्यवहार सच्चा, व्यवहार सच्चा, राग भी सच्चा, राग से भी काम होता है, समझे? निर्णय करने में राग भी काम करे, इस प्रकार राग पर सर्वस्व लगा दे, विकल्प पर... '**निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानकर 'वस्तु इस प्रकार ही है'...**' ऐसी ही है, व्यवहार से भी निश्चय का भान होता है ऐसा मान ले '**ऐसा श्रद्धान करे तो उलटा अकार्यकारी हो जाये।**' वहीं रुक जाये। राग, राग, राग, राग, निमित्त, राग निमित्त, बस गुरु के समागम से मिलेगा, शास्त्र के वाँचन से मिलेगा, भगवान के समवसरणमें से मिलेगा, यहाँ से महाविदेह में जायेंगे तो मिलेगा। समझ में आया? वहीं रुक जायेगा। आगे बढ़ेगा नहीं। '**उलटा अकार्यकारी हो जाये।**'

'**यही पुरुषार्थसिद्धियुपाय में कहा है:--**' देखो! बोलो!

अबुधस्य बोधनार्थं मुनिश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति।।६।।
माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य।
व्यवहार एव ही तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य।।७।।

देखो! कहाँ से कहाँ गाथाएँ लेकर मिलान किया है। पुरुषार्थसिद्धियुपाय, अमृतचंद्राचार्य महाराज, जो समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय के टीकाकार उन्होंने पुरुषार्थसिद्धियुपाय बनाया है, तत्त्वार्थसार बनाया। पुरुषार्थसिद्धियुपाय में.. वह चरणानुयोग का ग्रंथ है पुरुषार्थसिद्धियुपाय तो, उसमें ऐसा कहा,

'**अर्थ :-- मुनिराज अज्ञानी को समझाने के लिये असत्यार्थ जो व्यवहारनय उसका उपदेश देते हैं।**' यह दूसरी शैली (है)। ११ और १२वीं गाथा में बात चली है वह दूसरी बात है। यह तो पर को समझाने के लिये व्यवहार से समझाते हैं, अज्ञानी को व्यवहार से समझाते हैं। समझ में आया? और समयसार में १२वीं गाथा में जो चला, वह तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ बाद में जो रागादि रहे उसको जानने लायक है ऐसा वहाँ कहा है। वहाँ सम्यग्दृष्टि लेना, ११-१२ में। व्यवहार का जाननेवाला कहा वह। यह तो अज्ञानी को समझाने को मुनि व्यवहार से कथन करते हैं। समझ में आया? वहाँ कोई ऐसा लगाता है, १२वीं गाथा में, देखो! अज्ञानी को समझाने का वह व्यवहार है। ऐसा अर्थ किया है। वह एक है न? क्षीरसागर, क्षीरसागर है न?

उन्होंने ऐसा अर्थ किया है समयसार में १२वीं गाथा का। अज्ञानी को समझाने को व्यवहार (कहा है)। वहाँ अज्ञानी को समझाने की बात कहाँ है। वहाँ तो सम्यग्दर्शन निश्चय से अपना स्वरूप राग से पृथक् का भान हुआ, अभी अल्प पर्याय, रागादि है, उसको बराबर जानना। जाना हुआ, उस काल में, उस-उस प्रकार की जो पर्याय प्रगट हो, ऐसा जानने का कार्य वहाँ रह जाता है, बस इतना।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वहा ऊपर से निकाला है। वह बात हुई है, ... मूल गाथा में तो सम्यग्दर्शन सहित की बात है, परन्तु पहले से ऐसा जिसके पास से ऐसा जिनउपदेश मिले, जिनउपदेश मिले न? जिसके पास से वीतरागता का उपदेश मिले, उसके पास सुनना। वह तो आया न? यथार्थ उपदेश वीतरागमार्ग का। यथार्थ उपदेश। उतनी तो परीक्षा उसको होनी चाहिये कि नहीं? समझ में आया?

कहते हैं, '**मुनिराज अज्ञानी को समझाने के लिये असत्यार्थ...**' अभूतार्थ '**जो व्यवहारनय उसका उपदेश देते हैं। जो केवल व्यवहारही को जानता है, उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है।**' व्यवहार से उपदेश दिया और व्यवहार को ही पकड़ ले, वह उपदेश देने के लायक नहीं है, उपदेश समझने के लायक नहीं है। कहो, ठीक! क्यों कहा आपने व्यवहार से? लेकिन सुन न, तुझे समझाने के लिये कहा था। समझ में आया? '**केवल व्यवहारही को जानता है,...**' हाँ, देखो आया कि नहीं व्यवहार? है कि नहीं व्यवहार? क्या व्यवहार बिना निश्चय होता है? आप कहते हो न कि व्यवहार से समझाना पड़ता है। तो व्यवहार ने इतना तो लाभ किया न कि समझाने कार्य हुआ। ना, व्यवहार से समझाया और व्यवहार का अनुसरण छोड़कर निश्चय समझा तब व्यवहार से समझाया ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? '**केवल व्यवहारही को जानता है, उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है।**' कुछ लोग कहते हैं, ओहो..! आचार्य की इतनी संकुचित दृष्टि? वह तो लायकात कहते हैं। भैया! अरे..! तुम व्यवहार से...

हम तो दृष्टान्त देते हैं, वचनगुप्ति का क्या फल है? ऐसा मुनिराज बोलते हो। वचनगुप्ति से ऐसा लाभ है, मौन रहे तो ऐसा लाभ है, इसमें एकाग्रता होती है, फलाना होता है इत्यादि। तब वह सुननेवाला कहता है, महाराज! आप क्यों वचनगुप्ति नहीं करते हो? आप क्यों बोलते हो? तू नालायक है। समझ में आया? आप तो वचनगुप्ति का लाभ बताते हो और वचनगुप्ति तो करते नहीं। सुन न। तो आचार्यों को ऐसा कहेगा। विकल्प को छोड़ो। तो आप शास्त्र लिखने का विकल्प क्यों करते हो? अरे.. सुन न।

मुमुक्षु :-- उस वक्त उसका निषेध वर्तता है।

उत्तर :-- निषेध वर्तता है। वह तो आता है... आप क्यों... दूसरे कुछ राग करे तो आप को खेद होता है और आप को यह विकल्प आता है उसका कोई खेद नहीं? अरे.. सुन न, सुन तो सही। वह राग आता है उसके काल में, जाननेवाला जानता है, आदर है नहीं। वचनगुप्ति का लाभ बताया। वह नालायक है, कहते हैं।

वैसे व्यवहार को पकड़े और व्यवहार से उपदेश करने में आया वहाँ व्यवहार को पकड़ ले, '**व्यवहारमेव केवलमवैति**' आया न वह? व्यवहार को ही सब जान ले तो उसको व्यवहार ही निश्चय हो गया, वह तो उपदेश के लायक है नहीं। समझ में आया? '**जो केवल व्यवहारही को जानता है, उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है।**'

'**तथा जैसे कोई सच्चे सिंह को न जाने उसे बिलाव ही सिंह है...**' बिल्ली चली जाती थी, (तो कहा), देखो भैया, ऐसा सिंह होता है। तो उसको बिल्ली ही सिंह हो जाये (तो वह) समझने लायक नहीं है। वह तो बिल्ली से सिंह पर द-दृष्टि लेनी है कि सिंह ऐसा है, ऐसा है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, वह हो गयी। वह तो उसे यथार्थ क्या है खबर नहीं और व्यवहार से उपदेश कहने में (तो उसे) पकड़ लिया। व्यवहार आदरणीय है नहीं, समझाने को आता है, लेकिन आदरणीय है नहीं।

'**सच्चे सिंह को न जाने उसे बिलाव ही सिंह है; उसी प्रकार जो निश्चय को नहीं जाने उसके व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त होता है।**' व्यवहार को जाने, निश्चय को जाने नहीं। निश्चय को तो न जाने (कि) क्या चीज पर से भिन्न है क्या? और '**व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त होता है।**' लो, उसको तो व्यवहार ही निश्चयपना हो गया। कितना स्पष्ट किया है।

'**यहाँ कोई निर्विचारी पुरुष ऐसा कहे...**' आया, आप जब इतना कहते हो तो हम व्रत-ब्रत छोड़ देंगे। सुन न। '**यहाँ कोई निर्विचारी पुरुष ऐसा कहे...**' अज्ञानी मूढ (कहता है), '**तुम व्यवहार को असत्यार्थ-हेय कहते हो;...**' दो बोल लिये। व्यवहार को असत्यार्थ--झूठा और हेय कहते हो '**तो हम व्रत, शील, संयमादि व्यवहारकार्य किसलिये करें?**' आप कहते हो, हेय और असत्यार्थ है। तो अब हम व्रत, शील, संयम का राग क्यों करें? वाह! तो स्थिर हो जाना, कौन ना कहता है? स्थिर हो जा तो बहुत अच्छी बात है, परन्तु निचली भूमिका में स्थिरता होती नहीं। '**किसलिये करें?--सबको छोड़ देंगे।**' हम तो सब छोड़ने बैठेंगे। क्या छोड़े?

'**उससे कहते हैं कि कुछ व्रत, शील, संयमादिक का नाम व्यवहार नहीं है;...**' व्रत, शील, संयमादि कोई व्यवहार नहीं है। '**इनको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है,...**' वह पहले आया था प्रवृत्ति। प्रवृत्ति कोई व्यवहार नहीं है, उसको मानना कि यह व्यवहार मोक्षमार्ग है, व्यवहार है। नहीं है उसको मानना उसका ना व्यवहार है। कोई प्रवृत्ति '**व्रत, शील, संयमादिक का नाम व्यवहार नहीं है;...**' वह तो अपनी परिणति है। निश्चय से अपनी परिणति है। '**इनको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है, उसे छोड़ दे;...**' मान्यता छोड़ दे व्यवहार की, ये व्रत, नियम, शील, पूजा, भक्ति मोक्षमार्ग है ऐसी मान्यता छोड़ दे। क्या छोड़ेगा तू? वस्तु को छोड़ देगा? छोड़कर कहाँ जायेगा? समझ में आया?

'**और ऐसा श्रद्धान कर कि इनको तो बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है,...**' व्यवहार छोड़ने योग्य है, निश्चय आदरणीय है ऐसा हुआ, '**ऐसा श्रद्धान कर कि इनको तो बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है,...**' देखो! कैसी? इस श्रद्धान से। क्या श्रद्धान से? व्यवहार छोड़ने लायक है, व्यवहार हेय है, व्यवहार असत्यार्थ है, ऐसे श्रद्धान से, ऐसा श्रद्धान करके '**इनको तो बाह्य...**' ऐसा श्रद्धान हो तो व्रत, शिल, संयमादिक को '**बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है,...**' वह तो उपचार से कहा है। है नहीं, '**यह तो परद्रव्याश्रित है;...**' वह तो परद्रव्याश्रित रागादि है वह कहीं मोक्षमार्ग है नहीं। इसलिये उसको मोक्षमार्ग मानना छोड़ दे। व्रत छोड़कर कहाँ जायेगा? शुभ परिणाम को छोड़कर कहाँ जायेगा? ... तो बराबर है। नहीं तो पाप में नीचे गिर जायेगा। वह बात विशेष करेंगे...

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

बुधवार, दि. २२-८-१९६२,
सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १४

मोक्षमार्गप्रकाशक, सप्तम अध्याय चलता है। यहाँ तक आया,... '**यह तो परद्रव्याश्रित है;...**' क्या? शिष्य ने प्रश्न किया कि तुम व्रत, शील, संयम को तो असत्यार्थ, झूठा और हेय कहते हो, तो हम छोड़ देंगे व्रत, संयम। झूठा कहो तो हम किसलिये करें?